श्वेताम्बर परम्परा में रामकथा

श्वेताम्बर आगम साहित्य में जहाँ कृष्ण के जीवनवृत्त का पर्याप्त रूप से उल्लेख हुआ है, वहाँ राम के सम्बन्ध में मात्र उनके एवं उनके माता- पिता के नामोल्लेख से अधिक कुछ नहीं मिलता है। समवायांग के ५४ वें समवाय में तो २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव और ९ वासुदेव, ये ५४ उत्तमपुरुष होते हैं, इतना मात्र उल्लेख है, वहाँ इनके नामों का भी उल्लेख नहीं है। यद्यपि समवायांग के ही १५८ वें सूत्र में बलदेवों और वासुदेवों के वर्तमान भव के नाम, पूर्व भव के नाम, वासुदेवों के निदान-कारण और निदान नगरों के नाम और उनके माता-पिताओं के नाम आदि का उल्लेख है। यहाँ आठवें बलदेव का नाम पद्म (पउम), आठवें वासुदेव का नाम नारायण और इनके पिता का नाम दशरथ (दसरह) बताया गया है; इसी आधार पर हम इनका सम्बन्ध राम-लक्ष्मण से जोड़ सकते हैं। इसमें लक्ष्मण की माता को केकई और राम की माता को अपराजिता कहा गया है।

श्वेताम्बर परम्परा में रामकथा का प्रथम स्वतन्त्र ग्रंथ, विमलसूरि का पउमचरिय है। ग्रन्थकार ने वीर-निर्वाण सम्वत् ५३० (ई० सन् ४ या ६४) में इसकी रचना करने का उल्लेख किया है। इस प्रकार लेखक के स्वयं के निर्देश के अनुसार यह प्रथम शताब्दी का ग्रन्थ है। यद्यपि जैकोबी, प्रो० ध्रुव, पं० परमानन्द शास्त्री आदि कुछ विद्वान् इसे परवर्ती मानते हैं, फिर भी इसे ईसा की तीसरी शताब्दी के बाद का नहीं माना जा सकता है। वाल्मीकि रामायण के बाद रामकथा के स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में इसका स्थान प्रथम है। वस्तुत: यह राम-कथा का जैन संस्करण है। ग्रन्थ की अन्त:साक्षियों से सिद्ध होता है कि यह श्वेताम्बर परम्परा की रचना है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि इसमें जैन-मुनि के लिये 'सियम्बर' शब्द का प्रयोग हुआ है। सम्भवत: श्वेताम्बर शब्द के प्रयोग का यह प्राचीनतम उल्लेख है। ग्रंथ की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है, जो श्वेताम्बर परम्परा में आगमेतर ग्रन्थों की भाषा रही है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों का प्रणयन शौरसेनी प्राकृत में हुआ है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि ग्रन्थकार के समक्ष वाल्मीकि रामायण के साथ समवायांग का वह मूलपाठ भी रहा होगा जिसमें लक्ष्मण (नारायण) की माता को केकई बताया गया था। लेखक के सामने मूल प्रश्न यह था कि आगम की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखते हुए, वाल्मीकि के साथ किस प्रकार समन्वय किया जाये। यहाँ उसने एक अनोखी सूझ से काम लिया, वह लिखता है कि लक्ष्मण की माता का पितृगृह का नाम तो कैकेयी था, किन्तु विवाह के पश्चात दशरथ ने उसका नाम परिवर्तन कर उसे 'सुमित्रा' नाम दिया। पउमचरिय में भरत की माता को 'केगई' कहा गया है। वाल्मीकि रामायण से भिन्न इस ग्रंथ की रचना का मुख्य उद्देश्य काव्यानन्द की अनुभूति न होकर, कथा के माध्यम से धर्मोपदेश देना है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रेणिकचिंता नामक दूसरे उद्देशक में इसका उद्देश्य रामकथा में आई असंगतियों तथा कपोल-कल्पनाओं का निराकरण बताया गया है। यह बात सुस्पष्ट है कि यह रामकथा का उपदेशात्मक जैन संस्करण है और इसलिये इसमें यथासम्भव हिंसा, घृणा, व्यभिचार आदि दुष्प्रवृत्तियों को न उभार कर सद्प्रवृत्तियों को ही उभारा गया है। इसमें वर्ण व्यवस्था पर भी बल नहीं दिया है। यहाँ शम्बूक-वध का कारण शूद्र का तपस्या करना नहीं है। चन्द्रहास खड्ग की सिद्धि के लिये बांसों के झुरमुट में साधनारत शम्बूक लक्ष्मण के द्वारा अनजान में ही मारा जाता है। लक्ष्मण उस पूजित खड्ग को उठाते हैं और परीक्षा हेतु बाँसों के झुरमुट पर चला देते हैं, जिससे शम्बूक मारा जाता है। इस प्रकार जहाँ वाल्मीकि रामायण में शम्बूक वध की कथा वर्ण-विद्वेष का खुला उदाहरण है, वहाँ पउमचरिय का शम्बूक वध अनजान में हुई एक घटना है। पुन: कवि ने राम के चरित्र को उदात्त बनाये रखने हेतु शम्बूक और रावण का वध राम के द्वारा न करवाकर लक्ष्मण के द्वारा करवाया है। बालि के प्रकरण को भी दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया गया है। बालि सुग्रीव को राज्य देकर संन्यास ले लेते हैं। दूसरा कोई विद्याधर सुग्रीव का रूप बनाकर उसके राज्य एवं अन्त:पुर पर कब्जा कर लेता है। सुग्रीव राम की सहायता की अपेक्षा करता है और राम उसकी सहायता कर उस नकली सुग्रीव का वध करते हैं। यहाँ भी सुग्रीव के कथानक में से भ्रातृ-द्रोह एवं भ्रातृ-पत्नी से विवाह की घटना को हटाकर उसके चरित्र को उदात्त बनाया गया है। इसी प्रकार कैकेयी भरत हेतु राज्य की मांग राम के प्रति विद्वेष के कारण नहीं, अपितु भरत को वैराग्य लेने से रोकने के लिये करती है। राम भी पिता की आज्ञा से नहीं अपितु स्वेच्छा से ही वन को चल देते हैं ताकि वे भरत को राज्य पाने में बाधक नहीं रहे। इस प्रकार कैकेयी के व्यक्तित्व को भी ऊँचा उठाया गया है। न केवल यही अपितु सीताहरण के प्रकरण में भी मृगचर्म हेतु स्वर्ण मृग मारने के सीता के आग्रह की घटना को स्थान न देकर राम एवं सीता के चरित्र को निर्दोष और अहिंसामय बनाया गया है। रावण के चरित्र को उदात्त बनाने हेतु यह बताया गया है कि उसने किसी मुनि के समक्ष यह प्रतिज्ञा ले रखी थी कि मैं किसी परस्त्री का उसकी स्वीकृति के बिना शील भंग नहीं करूँगा। इसलिये वह सीता को समझा कर सहमत करने का प्रयत्न करता है, बलप्रयोग नहीं करता है। मांस-भक्षण के दोष दिखाकर सामिष भोजन से जन-मानस को विरत करना भी जैनधर्म की मान्यताओं के प्रसार का ही एक प्रयत्न है। ग्रन्थ में वानरों एवं राक्षसों को विद्याधरवंश के मानव बताया गया है, किन्तु यह भी सिद्ध किया गया है कि वे कला-कौशल और तकनीक में साधारण मनुष्यों से बहुत बढ़े-चढ़े थे। वे पाद-विहारी न होकर विमानों में विचरण करते थे। इस प्रकार इस ग्रंथ में विमलसूरि ने अपने युग में प्रचलित रामकथा को अधिक युक्ति संगत और धार्मिक बनाने का प्रयास किया है।

विमलसूरि के पउमचरिय के बाद रामकथा का एक विवरण हमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघदास गणी (छठी शताब्दी) की वसुदेवहिंडी में मिलता है। वसुदेवहिंडी की रामकथा कुछ प्रसंगों के संदर्भ में पउमचरिय की रामकथा से भिन्न है और वाल्मीकि रामायण के निकट है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सीता को रावण और मन्दोदरी की पुत्री बताया गया है, जिसे एक पेटी में बन्द कर जनक के उद्यान में गड़वा दिया गया था, जहाँ से हल चलाते समय जनक को उसकी प्राप्ति हुई थी। इस प्रकार यहाँ सीता की कथा को तर्कसंगत बनाते हुए भी उसका साम्य भूमि से उत्पन्न होने की धारणा के साथ जोड़ा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संघदासगणी ने रामकथा को कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। अधिकांश श्वेताम्बर लेखकों ने विमलसूरि का ही अनुसरण किया है। मात्र यही नहीं दिगम्बर परम्परा में पद्मपुराण के रचयिता रविसेन (७वीं शताब्दी) और अपभ्रंश पउमचरिउ के रचयिता यापनीयस्वयम्भू ने भी विमलसूरि का ही पूरी तरह अनुकरण किया है। पद्मपुराण तो पउमचरिय का ही विकसित संस्कृत रूपान्तरण मात्र है। यद्यपि उन्होंने उसे दिगम्बर परम्परा के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है।

आठवीं शताब्दी में हरभिद्र ने अपने धूर्ताख्यान में और नवीं शताब्दी में शीलाङ्काचार्य ने अपने ग्रंथ 'चउपन्नमहापुरिसचरिय' में अति संक्षेप में रामकथा को प्रस्तुत किया है। भद्रेश्वर (११वीं शताब्दी) की कहावली में भी रामकथा का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध हैं। तीनों ही ग्रन्थकार कथा विवेचन में विमलसूरि की परम्परा का पालन करते हैं। यद्यपि भद्रेश्वरसूरि ने सीता के द्वारा सपत्नियों के आग्रह पर रावण के पैर का चित्र बनाने का उल्लेख किया। ये तीनों ही रचनाएँ प्राकृत भाषा में हैं। १२वीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ योगशास्त्र की स्वोपज्ञवृत्ति में तथा त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में संस्कृत भाषा में रामकथा को प्रस्तुत किया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में वर्णित रामकथा का स्वतन्त्र रूप से भी प्रकाशन हो चुका है। हेमचन्द्र सामान्यतया तो विमलसूरि की रामकथा का ही अनुसरण करते हैं, किन्तु उन्होंने सीता के वनवास का कारण, सीता के द्वारा रावण का चित्र बनाना बताया है। यद्यपि उन्होंने इस प्रसंग के शेष सारे कथानक में पउमचरिय का ही अनुसरण किया है, फिर भी सौतियाडाह के कारण राम की अन्य पत्नियों ने सीता से रावण का चित्र बनवाकर, उसके सम्बन्ध में लोकापवाद प्रसारित किया, ऐसा मनोवैज्ञानिक आधार भी प्रस्तुत कर दिया है। इस प्रसंग में भद्रेश्वर सूरि की कहावली का अनुसरण करते हैं। चौदहवीं शताब्दी में धनेश्वर ने शत्रुंजय माहात्म्य में भी रामकथा का विवरण दिया है। सोलहवीं शताब्दी में देवविजय गणी ने रामचरित्र पर संस्कृत में एक स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा है। इसी प्रकार मेघ विजय (१७वीं शताब्दी) ने लघुत्रिषष्टि में भी रामकथा का संक्षिप्त विवरण दिया है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त जिनरत्न सिद्धांत कोष में और भी कुछ श्वेताम्बर आचार्यों के द्वारा रचित रामकथा सम्बन्धी ग्रंथों का उल्लेख उपलब्ध है। इन प्राकृत और संस्कृत की रामकथाओं के अतिरिक्त अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी में भी श्वेताम्बर आचार्यों ने रामकथा सम्बन्धी साहित्य लिखा है। इस सम्बन्ध में अभी भी व्यापक सर्वेक्षण और शोध की आवश्यकता है।

सोलहवीं शताब्दी में उपकेशगच्छ के वाचक विनय समुद्र ने राजस्थानी में पद्मचरित लिखा था। सम्प्रति स्थानकवासी जैन मुनि शुक्लचंदजी ने भी 'शुक्ल जैन रामायण' के नाम से हिन्दी पद्य में रामकथा लिखी है। संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी हनुमान चरित्र, अंजना सुन्दरी चरित्र और सीता चरित्र के रूप में अनेकों खण्ड काव्य भी उपलब्ध हैं। सम्प्रति आचार्य तुलसी के द्वारा रचित अग्निपरीक्षा तो बहुचर्चित है ही। इस प्रकार रामकथा के विकास में श्वेताम्बर जैन आचार्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर की निर्वाण तिथि पर पुनर्विचार

सामान्यतया जैन लेखकों ने अपनी काल गणना को शक संवत् से समीकृत करके यह माना है कि महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष और पाँच माह पश्चात् शक राजा हुआ।[१] इसी मान्यता के आधार पर वर्तमान में भी महावीर का निर्वाण ई.पू. ५२७ माना जाता है। आधुनिक जैन लेखकों में दिगम्बर परम्परा के पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार[२] एवं श्वेताम्बर परम्परा के मुनि श्री कल्याण विजयजी[३] आदि ने भी वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ वर्ष में माना है। लगभग ७वीं शती से कुछ अपवादों के साथ इस तिथि को मान्यता प्राप्त है। श्वेताम्बर परम्परा में सर्वप्रथम "तित्थोगाली"[४] नामक प्रकीर्णक में और दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम "तिलोयपण्णत्ति"[५] में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख मिलता है कि महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष एवं ५ माह के पश्चात् शक नृप हुआ। ये दोनों ग्रन्थ ईसा की ६-७वीं शती में निर्मित हुए हैं। इसके पूर्व किसी भी ग्रन्थ में महावीर के निर्वाणकाल को शक संवत् से समीकृत करके उनके अन्तर को स्पष्ट किया गया हो- यह मेरी जानकारी में नहीं है। किन्तु इतना निश्चित है कि लगभग ६-७वीं शती से ही महावीरनिर्वाण शक पूर्व ६०५ में हुआ था, यह एक सामान्य अवधारणा रही है। इसके पूर्व कल्पसूत्र की स्थविरावली और नन्दीसूत्र की वाचक वंशावली में महावीर की पट्टपरम्परा का उल्लेख तो है किन्तु इनमें आचार्यों के कालक्रम की कोई चर्चा नहीं है। अत: इनके आधार पर महावीर की निर्वाण तिथि को निश्चित करना एक कठिन समस्या है। कल्पसूत्र में यह तो उल्लेख मिलता है कि अब वीरनिर्वाण के ९८० वर्ष वाचनान्तर से ९९३ वर्ष व्यतीत हो चुके है।[६] इससे इतना ही फलित होता है कि वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् देवर्द्धिक्षमाश्रमण ने प्रस्तुत ग्रन्थ की यह अन्तिम वाचना प्रस्तुत की। इसी प्रकार स्थानांग[७], भगवतीसूत्र[८] और आवश्यकनिर्युक्ति[९] में निह्नवों के उल्लेखों के साथ वे महावीर के जीवनकाल और निर्वाण से कितने समय पश्चात् हुए हैं- यह निर्देश प्राप्त होता है। यही कुछ ऐसे सूत्र हैं जिनकी बाह्य सुनिश्चित समय वाले साक्ष्यों से तुलना करके ही हम महावीर की निर्वाण तिथि पर विचार कर सकते हैं।

महावीर की निर्वाण तिथि के प्रश्न को लेकर प्रारम्भ से मत-वैभिन्य रहे हैं। दिगम्बर परम्परा के द्वारा मान्य तिलोयपण्णत्ति में यद्यपि यह स्पष्ट उल्लेख है कि वीरनिर्वाण के ६०५ वर्ष एवं ५ मास पश्चात् शक नृप हुआ, किन्तु उसमें इस सम्बन्ध में निम्न चार मतान्तरों का भी उल्लेख मिलता है।[१०]

१. वीर जिनेन्द्र के मुक्ति प्राप्त होने के ४६१ वर्ष पश्चात् शक नृप हुआ।

२. वीर भगवान् के मुक्ति प्राप्त होने के ९७८५ वर्ष पश्चात् शक नृप हुआ।

३. वीर भगवान् के मुक्ति प्राप्त होने के १४७९३ वर्ष पश्चात् शक नृप हुआ।

४. वीर जिन के मुक्ति प्राप्त करने के ६०५ वर्ष एवं ५ माह पश्चात् शक नृप हुआ।

इसके अतिरिक्त षट्खण्डागम की "धवला" टीका में भी महावीर के निर्वाण के कितने वर्षों के पश्चात् शक (शालिवाहन शक) नृप हुआ, इस सम्बन्ध में तीन मतों का उल्लेख हुआ है[११]-

१. वीरनिर्वाण के ६०५ वर्ष और पाँच माह पश्चात्

२. वीरनिर्वाण के १४७९३ वर्ष पश्चात्

३. वीरनिर्वाण के ७९९५ वर्ष और पाँच माह पश्चात्

श्वेताम्बर परम्परा में आगमों की देवर्द्धि की अन्तिमवाचना भगवान महावीर के निर्वाण के कितने समय पश्चात् हुई, इस सम्बन्ध में स्पष्टतया दो मतों का उल्लेख मिलता है-प्रथम मत उसे वीरनिर्वाण के ९८० वर्ष पश्चात् मानता है, जबकि दूसरा मत उसे ९९३ वर्ष पश्चात् मानता है।[१२]

श्वेताम्बर परम्परा में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहणकाल को लेकर भी दो मान्यतायें पायी जाती हैं। प्रथम परम्परागत मान्यता के अनुसार वे वीरनिर्वाण संवत् २१५ में राज्यासीन हुए[१३] जबकि दूसरी हेमचन्द्र की मान्यता के अनुसार वे वीरनिर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् राज्यासीन हुए।[१४] हेमचन्द्र द्वारा प्रस्तुत यह दूसरी मान्यता महावीर के ई.पू. ५२७ में निर्वाण प्राप्त करने की अवधारणा में बाधक है।[१५] इस विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि महावीर का निवार्ण तिथि के सम्बन्ध में प्राचीनकाल में भी विवाद था।

चूँकि महावीर की निर्वाण तिथि के सम्बन्ध में प्राचीन आन्तरिक साक्ष्य सबल नहीं थे, अत: पाश्चात्य विद्वानों ने बाह्य साक्ष्यों के आधार पर महावीर की निर्वाण तिथि को निश्चित करने का प्रयत्न किया, परिणामस्वरूप महावीर की निर्वाण तिथि के सम्बन्ध में अनेक नये मत भी प्रकाश में आये। महावीर की निर्वाण तिथि के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं-

१. हरमन जकोबी[१६] ई.पू. ४७७– इन्होंने हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्व के उस उल्लेख को प्रामाणिक माना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य वीरनिर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् राज्यासीन हुआ और इसी आधार पर महावीर की निर्वाण तिथि निश्चित की।

२. जे. शारपेन्टियर[१७] ई.पू. ४६७– इन्होंने भी हेमचन्द्र को आधार बनाया है और चन्द्रगुप्त मौर्य के १५५ वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण माना।

३. पं. ए. शान्तिराज शास्त्री[१८] ई.पू. ६६३– इन्होंने शक संवत् को विक्रम संवत् माना है और विक्रम सं. के ६०५ वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण माना।

४. प्रो. काशीप्रसाद जायसवाल[१९]– इन्होंने अपने लेख आइडेन्टीफिकेशन आफ कल्की में मात्र दो परम्पराओं का उल्लेख किया है। महावीर की निर्वाण तिथि का निर्धारण नहीं किया है।

५. एस. व्ही. वैंक्टेश्वर[२०] ई.पू. ४३७– इनकी मान्यता आनन्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रम संवत् पर आधारित है। यह विक्रम संवत् के ९० वर्ष बाद प्रचलित हुआ था।

६. पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार[२१] ई.पू. ५२८– इन्होंने अनेक तर्कों के आधार पर परम्परागत मान्यता को पुष्ट किया।

७. मुनि श्री कल्याणविजय[२२] ई.पू. ५२८– इन्होंने भी परम्परागत मान्यता की पुष्टि करते हुए उसकी असंगति के निराकरण का प्रयास किया है।

८. प्रो. पी.एच.एल इगरमोण्ट[२३] ई.पू. २५२– इनके तर्क का आधार जैन परम्परा में तिष्यगुप्त की संघभेद की घटना का जो महावीर के जीवनकाल में उनके कैवल्य के १६वें वर्ष में घटित हुई, बौद्ध संघ में तिष्यरक्षिता द्वारा बोधि वृक्ष को सुखाने तथा संघभेद की घटना से जो अशोक के राज्यकाल में हुई थी समीकृत कर लेना है।

९. वी.ए. स्मिथ[२४] ई.पू.५२७– इन्होंने सामान्यतया प्रचलित अवधारण को मान्य कर लिया है।

१०. प्रो. के. आर. नारमन[२५] लगभग ई.पू. ४००– भगवान महावीर की निर्वाण तिथि का निर्धारण करने हेतु जैन साहित्यिक स्रोतों के साथ-साथ हमें अनुश्रुतियों और अभिलेखीय साक्ष्यों पर भी विचार करना होगा। पूर्वोक्त मान्यताओं में कौन सी मान्यता प्रामाणिक है, इसका निश्चय करने के लिये हम तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण करेंगे और यथासम्भव अभिलेखीय साक्ष्यों को प्राथमिकता देंगे।

भगवान महावीर के समकालिक व्यक्तियों में भगवान बुद्ध, बिम्बसार, श्रेणिक और अजातशत्रु कुणिक के नाम सुपरिचित हैं। जैन स्रोतों की अपेक्षा इनके सम्बन्ध में बौद्ध स्रोत हमें अधिक जानकारी प्रदान करते हैं। जैन स्रोतों के अध्ययन से भी इनकी समकालिकता पर कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है। जैन आगम साहित्य बुद्ध के जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में प्राय: मौन हैं, किन्तु बौद्ध त्रिपिटक साहित्य में महावीर और बुद्ध की समकालिक उपस्थिति के अनेक सन्दर्भ हैं। किन्तु यहाँ हम उनमें से केवल दो प्रसंगों की चर्चा करेंगे। प्रथम प्रसंग में दीघनिकाय का वह उल्लेख आता है जिसमें अजातशत्रु अपने समय के विभिन्न धर्माचार्यों से मिलता है। इस प्रसंग में अजातशत्रु का महामात्य निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र के सम्बन्ध में कहता है-"हे देव! ये निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र संघ और गण के स्वामी हैं, गण के आचार्य हैं, ज्ञान, यशस्वी तीर्थंकर हैं, बहुत से लोगों के श्रद्धास्पद और सज्जन मान्य हैं। ये चिरप्रव्रजित एव अर्धगतवय (अधेड़) हैं।[२६] तात्पर्य यह है कि अजातशत्रु के राज्यासीन होने के समय महावीर लगभग ५० वर्ष के रहे होंगे क्योंकि उनका निर्वाण अजातशत्रु कुणिक के राज्य के २२वें वर्ष में माना जाता है। उनकी सर्व आयु ७२ वर्ष में से २२ वर्ष कम करने पर उस समय वे ५० वर्ष के थे-यह सिद्ध हो जाता है।[२७] जहाँ तक बुद्ध का प्रश्न है वे अजातशत्रु के राज्यासीन होने के ८वें वर्ष में निर्वाण को प्राप्त हुए, ऐसी बौद्ध लेखकों की मान्यता है।[२८] इस आधार पर दो तथ्य फलित होते हैं- प्रथम महावीर जब ५० वर्ष के थे, तब बुद्ध (८०-८) ७२ वर्ष के थे अर्थात् बुद्ध, महावीर से उम्र में २२ वर्ष बड़े थे। दूसरे यह कि महावीर का निर्वाण, बुद्ध के निर्वाण के (२२-८=१४) १४ वर्ष पश्चात् हुआ था। ज्ञातव्य है कि "दीघनिकाय" के इस प्रसंग में जहाँ निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र आदि छहों तीर्थंकरों को अर्धवयगत कहा गया, वहाँ गौतम बुद्ध की वय के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है।[२९]

किन्तु उपरोक्त तथ्य के विपरीत "दीघनिकाय" में यह भी सूचना मिलती है कि महावीर बुद्ध के जीवनकाल में ही निर्वाण को प्राप्त हो गये थे। "दीघनिकाय" के वे उल्लेख निम्नानुसार हैं-

ऐसा मैंने सुना-एक समय भगवान् शाक्य (देश) में वेधन्जा नामक शाक्यों के आम्रवन प्रासाद में विहार कर रहे थे।

उस समय निगण्ठ नातपुत्त (=तीर्थंकर महावीर) की पावा में हाल ही में मृत्यु हुई थी। उनके मरने पर निगण्ठों में फूट हो गई थी, दो पक्ष हो गये थे, लड़ाई चल रही थी, कलह हो रहा था। वे लोग एक-दसूरे को वचन-रूपी वाणों से बेधते हुए विवाद करते थे-"तुम इस धर्मविनय (धर्म) को नहीं जानते, मैं इस धर्मविनय को जानता हूँ। तुम भला इस धर्मविनय को क्या जानोगे? तुम मिथ्या प्रतिपन्न हो (तुम्हारा समझना गलत है), मैं सम्यक् -प्रतिपन्न हूँ। मेरा कहना सार्थक है और तुम्हारा कहना निरर्थक। जो (बात) पहले कहनी चाहिये थी वह तुमने पीछे कही और जो पीछे कहनी चाहिये थी, वह तुमने पहले की। तुम्हारा वाद बिना विचार का उल्टा है। तुमने वाद रोपा, तुम निग्रह-स्थान में आ गये। इस आक्षेप से बचने के लिये यत्न करो, यदि शक्ति है तो इसे सुलझाओ। मानो निगण्ठों में युद्ध (बध) हो रहा था।

निगण्ठ नातपुत्त के जो श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे, वे भी निगण्ठ के वैसे दुराख्यात (ठीक से न कहे गये), दुष्प्रवेदित (ठीक से न साक्षात्कार किये गये), अ-नैर्याणिक (पार न लगाने वाले), अन्-उपशम-संवर्तनिक (न-शान्तिगामी), अ-सम्यक् -संबुद्ध-प्रवेदित (किसी बुद्ध द्वारा न साक्षात् किया गया), प्रतिष्ठा (नींव)-रहित भिन्न-स्तूप, आश्रयरहित धर्म में अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त हो रहे थे।[३०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर त्रिपिटक साहित्य में महावीर को अधेड़वय का कहा गया है, वहीं दूसरी ओर बुद्ध के जीवनकाल में उनके स्वर्गवास की सूचना भी है। इतना निश्चित है कि दोनों बातें एक साथ सत्य सिद्ध नहीं हो सकती। मुनि कल्याणविजय जी आदि ने बुद्ध के जीवनकाल में महावीर के निर्वाण सम्बन्धी अवधारणा को भ्रान्त बताया है, उन्होंने महावीर के कालकवलित होने की घटना को उनकी वास्तविक मृत्यु न मानकर, उनकी मृत्यु का प्रवाद माना है। जैन आगमों में भी यह स्पष्ट उल्लेख है कि उनके निर्वाण के लगभग १६ वर्ष पूर्व उनकी मृत्यु का प्रवाद फैल गया था जिसे सुनकर अनेक जैन श्रमण भी अश्रुपात करने लगे थे। चूँकि इस प्रवाद के साथ महावीर के पूर्व शिष्य मंखलीगोशाल और महावीर एवं उनके अन्य श्रमण शिष्यों के बीच हुए कटु-विवाद की घटना जुड़ी हुई थी। अत: दीघनिकाय का प्रस्तुत प्रसंग इन दोनों घटनाओं का एक मिश्रित रूप है। अत: बुद्ध के जीवनकाल में महावीर की मृत्यु के दीघनिकाय के उल्लेख को उनकी वास्तविक मृत्यु का उल्लेख न मानकर गोशालक के द्वारा विवाद के पश्चात् फेंकी गई तेजोलेश्या से उत्पन्न दाह ज्वार जन्य तीव्र बीमारी के फलस्वरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फैले उनकी मृत्यु के प्रवाद का उल्लेख मानना होगा।

चूँकि बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रुकुणिक के राज्याभिषेक के आठवें वर्ष[३१] में हुआ, अत: महावीर का निर्वाण २२वें वर्ष में[३२] हुआ होगा। अत: इतना निश्चित है कि महावीर का निर्वाण बुद्ध के निर्वाण के १४ वर्ष बाद हुआ। इसलिये बुद्ध की निर्वाण की तिथि का निर्धारण महावीर की निर्वाण तिथि को प्रभावित अवश्य करेगा।

सर्वप्रथम हम महावीर की निर्वाण तिथि का जैनस्रोतों एवं अभिलेखों के आधार पर निर्धारण करेंगे और फिर यह देखेंगे कि इस आधार पर बुद्ध की निर्वाण तिथि क्या होगी?

महावीर की निर्वाण तिथि का निर्धारण करते समय हमें यह देखना होगा कि आचार्य भद्रबाहु और स्थूलभद्र की महापद्मनन्द एवं चन्द्रगुप्त मौर्य से, आचार्य सुहस्ति की सम्प्रति से, आर्य मंक्षु (मंगू), आर्य नन्दिल, आर्च नागहस्ति, आर्यवृद्ध एवं आर्य कृष्ण की अभिलेखों में उल्लेखित उनके काल से तथा आर्य देवर्द्धिक्षमाश्रमण की वल्लभी के राजा ध्रुवसेन से समकालीनता किसी प्रकार बाधित नहीं हो। इतिहासविद् सामान्यतया इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि चन्द्रगुप्त का राज्यसत्ताकाल ई.पू. २९७ तक रहा है।[३३] अत: वही सत्ताकाल भद्रबाहु और स्थूलीभद्र का भी होना चाहिये। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि चन्द्रगुप्त ने नन्दों से सत्ता हस्तगत की थी और अन्तिम नन्द के मन्त्री शकडाल का पुत्र स्थूलीभद्र था। अत: स्थूलीभद्र को चन्द्रगुप्त मौर्य का कनिष्ठ समसामयिक और भद्रबाहु को चन्द्रगुप्त मौर्य का वरिष्ठ समसामयिक होना चाहिये। चाहे यह कथन पूर्णत: विश्वसनीय माना जाये या नहीं माना जाये कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन दीक्षा ग्रहण की थी-फिर भी जैन अनुश्रुतियों के आधार पर इतना तो मानना ही होगा कि भद्रबाहु और स्थूलीभद्र चन्द्रगुप्त मौर्य के समसामयिक थे। स्थूलीभद्र के वैराग्य का मुख्य कारण उसके पिता के प्रति नन्दवंश के अन्तिम शासक महापद्मनन्द का दुर्व्यवहार और उनकी घृणित हत्या मानी जा सकती है।[३४] पुन: स्थूलीभद्र भद्रबाहु से नहीं, अपितु सम्भूतिविजय से दीक्षित हुए थे। पाटलिपुत्र की प्रथम वाचना के समय वाचना प्रमुख भद्रबाहु और स्थूलीभद्र न होकर सम्भूतिविजय रहे हैं-क्योंकि उस वाचना में ही स्थूलीभद्र को भद्रबाहु से पूर्व-ग्रन्थों का अध्ययन कराने का निश्चय किया गया था- अत: प्रथम वाचना नन्द शासन के ही अन्तिम चरण में कभी हुई है। इस प्रथम वाचना का काल वीरनिर्वाण संवत् माना जाता है। यदि हम एक बार दोनों परम्परागत मान्यताओं को सत्य मानकर यह मानें कि आचार्य भद्रबाहु वीरनिर्वाण सं. १५६ से १७० तक आचार्य रहे[३५] और चन्द्रगुप्त मौर्य वीरनिर्वाण सं. २१५ में राज्यासीन हुआ तो दोनों की सम-सामयिकता सिद्ध नहीं होती है। इस मान्यता का फलित यह है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यासीन होने के ४५ वर्ष पूर्व ही भद्रबाहु स्वर्गवासी हो चुके थे। इस आधार पर स्थूलीभद्र चन्द्रगुप्त मौर्य के लघु सम-सामयिक भी नहीं रह जाते हैं। अत: हमें यह मानना होगा कि चन्द्रगुप्त मौर्य वीरनिर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् ही राज्यासीन हुआ। हिमवन्त स्थविरावली[३६] एवं आचार्य हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्व[३७] में भी यही तिथि मानी गई है। इस आधार पर भद्रबाहु और स्थूलिभद्र की चन्द्रगुप्त मौर्य से सम-सामयिकता भी सिद्ध हो जाती है। लगभग सभी पट्टावलियाँ भद्रबाहु के आचार्यत्वकाल का समय वीरनिर्वाण १५६-१७० मानती हैं।[३८] दिगम्बर परम्परा में भी तीन केवली और पाँच श्रुतकेवलि का कुल समय १६२ वर्ष माना गया है। भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवलि थे अत: दिगम्बर परम्परानुसार भी उनका स्वर्गवास वीरनिर्वाण सं. १६२ मानना होगा।[३९] इस प्रकार दोनों परम्पराओं के अनुसार भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य की सम-सामयिकता सिद्ध हो जाती है। मुनि श्री कल्याणविजयजी ने चन्द्रगुप्त मौर्य और भद्रबाहु की सम-सामयिकता सिद्ध करने हेतु सम्भूतिविजय का आचार्यत्वकाल ८ वर्ष के स्थान पर ६० वर्ष मान लिया। इस प्रकार उन्होंने एक ओर महावीर का निर्वाण समय ई.पू. ५२७ मानकर भी भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्य की सम-सामयिकता स्थापित करने का प्रयास किया।[४०] किन्तु इस सन्दर्भ में आठ का साठ मान लेना उनकी अपनी कल्पना है, इसका प्रामाणिक आधार उपलब्ध नहीं है।[४१] सभी श्वेताम्बर पट्टावलियाँ वीरनिर्वाण सं. १७० में ही भद्रबाहु का स्वर्गवास मानती हैं। पुन: तित्थोगाली में भी यही निर्दिष्ट है कि वीरनिर्वाण संवत् १७० में चौदह पूर्वों के ज्ञान का विच्छेद (क्षय) प्रारम्भ हुआ। भद्रबाहु ही अन्तिम १४ पूर्वधर थे-उनके बाद कोई भी १४ पूर्वधर नहीं हुआ। अत: भद्रबाहु का स्वर्गवास श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार वीरनिर्वाण सं. १७० में और दिगम्बर परम्परा के अनुसार वीरनिर्वाण सं. १६२ ही सिद्ध होता है और इस आधार पर भद्रबाहु एवं स्थूलीभद्र की अन्तिम नन्द एवं चन्द्रगुप्त मौर्य से सम-सामयिकता तभी सिद्ध हो सकती है जब महावीर का निर्वाण विक्रम पूर्व ४१० तथा ई.पू. ४६७ माना जाये। अन्य अभी विकल्पों में भद्रबाहु एवं स्थूलीभद्र की अन्तिम नन्दराजा और चन्द्रगुप्त मौर्य से समकालिकता घटित नहीं हो सकती है। "तित्थोगाली पइन्नयं" में भी स्थूलीभद्र और नन्दराजा की समकालिकता वर्णित हैं।[४२] अत: इन आधारों पर महावीर का निर्वाण ई.पू. ४६७ ही अधिक युक्ति संगत लगता है।

पुन: आर्य सुहस्ति और सम्प्रति राजा की समकालीनता भी जैन परम्परा में सर्वमान्य है। इतिहासकारों ने सम्प्रति का समय ई.पू. २३१-२२१ माना है।[४३] जैन पट्टावलियों के अनुसार आर्य सुहस्ति का युग प्रधान आचार्यकाल वीरनिर्वाण सं. २४५-२९१ तक रहा है। यदि हम वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ को आधार बनाकर गणना करें तो यह मानना होगा कि आर्य सुहस्ति ई.पू. २८२ में युग प्रधान आचार्य बने और ई.पू. २३६ में स्वर्गवासी हो गये। इस प्रकार वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ में मानने पर आर्य सुहस्ति और सम्प्रति राजा में किसी भी रूप में समकालीनता नहीं बनती है किन्तु यदि हम वीरनिर्वाण ई.पू. ४६७ मानते हैं तो आर्य सुहस्ति का काल ४६७-२४५ई.पू. २२२ से प्रारम्भ होता है। इससे समकालिकता तो बन जाती है- यद्यपि आचार्य के आचार्यत्वकाल में सम्प्रति का राज्यकाल लगभग १ वर्ष ही रहता है। किन्तु आर्य सुहस्ति का सम्पर्क सम्प्रति से उसके यौवराज्य काल में, जब वह अवन्ति का शासक था, तब हुआ था और सम्भव है कि तब आर्य सुहस्ति संघ के युग प्रधान आचार्य न होकर भी प्रभावशाली मुनि रहे हों। ज्ञातव्य है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य सुहस्ति स्थूलीभद्र से दीक्षित हुए थे। पट्टावलियों के अनुसार स्थूलिभद्र की दीक्षा वीरनिर्वाण सं. १४६ में हुई थी और स्वर्गवास वीरनिर्वाण २१५ में हुआ था। इससे यह फलित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक के ९ वर्ष पूर्व अन्तिम नन्द राजा (नव नन्द) के राज्यकाल में वे दीक्षित हो चुके थे। यदि पट्टावली के अनुसार आर्य सुहस्ति की सर्व आयु १०० वर्ष और दीक्षा आयु ३० वर्ष मानें तो वे वीरनिर्वाण सं. २२१ अर्थात् ई.पू. २४६ (वीरनिर्वाण ई.पू. ४६७ मानने पर) में दीक्षित हुए हैं। इससे आर्य सुहस्ति की सम्प्रति से समकालिकता तो सिद्ध हो जाती है किन्तु उन्हें स्थूलीभद्र का हस्त-दीक्षित मानने में ६ वर्ष का अन्तर आता है क्योंकि उनके दीक्षित होने के ६ वर्ष पूर्व ही वीरनिर्वाण से २१५ में स्थूलीभद्र का स्वर्गवास हो चुका था। सम्भावना यह भी हो सकती है कि सुहस्ति ३० वर्ष की आयु के स्थान पर २३-२४ वर्ष में ही दीक्षित हो गये हों। फिर भी यह सुनिश्चित है कि पट्टावलियों के उल्लेखों के आधार पर आर्य सुहस्ति और सम्प्रति की समकालीनता वीरनिर्वाण ई.पू. ४६७ पर ही सम्भव है। उसके पूर्व ई.पूर्व. ५२७ में अथवा उसके पश्चात् की किसी भी तिथि को महावीर का निर्वाण मानने पर यह समकालीनता सम्भव नहीं है।

इस प्रकार भद्रबाहु और स्थूलिभद्र की महापद्मनन्द और चन्द्रगुप्त मौर्य से तथा आर्य सुहस्ती की सम्प्रति से समकालीनता वीरनिर्वाण ई.पू. ४६७ मानने पर सिद्ध की जा सकती है। अन्य सभी विकल्पों में इनकी समकालिकता सिद्ध नहीं होती है। अत: मेरी दृष्टि में महावीर का निर्वाण ई.पू. ४६७ मानना अधिक युक्तसंगत होगा।

अब हम कुछ अभिलेखों के आधार पर भी महावीर के निर्वाण समय पर विचार करेंगे-

मथुरा के अभिलेखों[४४] में उल्लेखित पाँच नामों में से नन्दिसूत्र स्थविरावली[४५] के आर्य मंगु, आर्य नन्दिल और आर्य हस्ति (हस्त हस्ति)- ये तीन नाम तथा कल्पसूत्र स्थविरावली[४६] के आर्य कृष्ण और आर्य वृद्ध ये दो नाम मिलते हैं। पट्टावलियों के अनुसार आर्य मंगु का युग-प्रधान आचार्यकाल वीरनिर्वाण संवत् ४५१ से ४७० तक माना गया है।[४७] वीरनिर्वाण ई.पू. ४६७ मानने पर इनका काल ई.पू. १६ से ई० सन् ३ तक और वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ मानने पर इनका काल ई.पू. ७६ से ई.पू. ५७ आता है। जबकि अभिलेखीय आधार पर इनका काल शक सं. ५२ (हुविष्क वर्ष ५२) अर्थात् ई.सन् १३० आता है[४८]- अर्थात् इनके पट्टावली और अभिलेख के काल में वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ मानने पर लगभग २०० वर्षों का अन्तर आता है और वीरनिर्वाण ई.प ४६७ मानने पर भी लगभग १२७ वर्ष का अन्तर तो बना ही रहता है। अनेक पट्टावलियों में आर्य मंगु का उल्लेख भी नहीं है। अत: उनके काल के सम्बन्ध में पट्टावलीगत अवधारणा प्रामाणिक नहीं है। पुन: आर्य मंगु का नाम मात्र जिस नन्दीसूत्र स्थविरावली में है और यह स्थविरावली भी गुरु-शिष्य परम्परा की सूचक नहीं है। अत: बीच में कुछ नाम छूटने की सम्भावना है जिसकी पुष्टि स्वयं मुनि कल्याणविजयजी ने भी की है।[४९] इस प्रकार आर्य मंगु के अभिलेखीय साक्ष्य के आधार पर महावीर के निर्वाण काल का निर्धारण सम्भव नहीं है। क्योंकि इस आधार पर ई.पू.५२७ की परम्परागत मान्यता ई.पू. ४६७ की विद्वन्मान्य मान्यता दोनों ही सत्य सिद्ध नहीं होती है। अभिलेख एवं पट्टावली का समीकरण करने पर इससे वीरनिर्वाण ई.पू. ३६० के लगभग फलित होता है। इस अनिश्चितता का कारण आर्य मंगु के काल को लेकर विविध भ्रान्तियों की उपस्थिति है।

जहाँ तक आर्य नन्दिल का प्रश्न है, हमें उनके नाम का उल्लेख भी नन्दिसूत्र में मिलता है। नन्दिसूत्र में उनका उल्लेख आर्य मंगु के पश्चात् और आर्य नागहस्ति के पूर्व मिलता है।[५०] मथुरा के अभिलेखों में नन्दिक (नन्दिल) का एक अभिलेख शक-संवत् ३२ का है। दूसरे शक सं. ९३ के लेख में नाम स्पष्ट नहीं है, मात्र "न्दि" मिला है।[५१] आर्य नन्दिल का उल्लेख प्रबन्धकोश एवं कुछ प्राचीन पट्टावलियों में भी है-किन्तु कहीं पर भी उनके समय का उल्लेख नहीं होने से इस अभिलेखीय साक्ष्य के आधार पर महावीर के निर्वाणकाल का निर्धारण सम्भव नहीं है।

अब हम नागहस्ति की ओर आते हैं- सामान्यतया सभी पट्टावलियों में आर्य वज्र का स्वर्गवास वीरनिर्वाण सं. ५८४ में माना गया है। आर्य वज्र के पश्चात् १३ वर्ष आर्य रक्षित, २० वर्ष पुष्यमित्र और ३ वर्ष वज्रसेन युगप्रधान रहे अर्थात् वीरनिर्वाण सं. ६२० में वज्रसेन का स्वर्गवास हुआ। मेरुतुंग की विचारश्रेणी में इसके बाद आर्य निर्वाण ६२१ से ६९० तक युगप्रधान रहे।[५२] यदि मथुरा अभिलेख के हस्तहस्ति ही नागहस्ति हों तो माघहस्ति के गुरु के रूप में उनका उल्लेख शक सं.५४ के अभिलेख में मिलता है अर्थात् वे ई.सन् १३२ के पूर्व हुए हैं। यदि हम वीरनिर्वाण ई.पू. ४६७ मानते हैं तो उनका युग प्रधान काल ई. सन् १५४-२२३ आता है। अभिलेख उनके शिष्य को ई.सन् १३२ में होने की सूचना देता है यद्यपि यह मानकर सन्तोष किया जा सकता है कि युग प्रधान होने के २२ वर्ष पूर्व उन्होंने किसी को दीक्षित किया होगा। यद्यपि इनकी सर्वायु १०० वर्ष मानने पर तब उनकी आयु मात्र ११ वर्ष होगी और ऐसी स्थिति में उनके उपदेश से किसी का दीक्षित होना और उस दीक्षित शिष्य के द्वारा मूर्ति प्रतिष्ठा होना असम्भव सा लगता है। किन्तु यदि हम परम्परागत मान्यता के आधार पर वीरनिर्वाण को शक संवत् ६०५ पूर्व या ई. पू.५२७ मानते हैं तो पट्टावलीगत उल्लेखों और अभिलेखीय साक्ष्यों में संगति बैठ जाती है। इस आधार पर उनका युग प्रधान काल शक सं.१६ से शक सं.८५ के बीच आता है और ऐसी स्थिति में शक सं.५४ में उनके किसी शिष्य के उपदेश से मूर्ति प्रतिष्ठा होना सम्भव है। यद्यपि ६९ वर्ष तक उनका युग प्रधानकाल मानना सामान्य बुद्धि से युक्ति संगत नहीं लगता है। अत: नागहस्ति सम्बन्धी यह अभिलेखीय साक्ष्य पट्टावली की सूचना को सत्य मानने पर महावीर का निर्वाण ई.पू.५२७ मानने के पक्ष में जाता है।

पुन: मथुरा के एक अभिलेखयुक्त अंकन में आर्यकृष्ण का नाम सहित अंकन पाया जाता है। यह अभिलेख शक संवत् ९५ का है।[५३] यदि हम आर्यकृष्ण का समीकरण कल्पसूत्र स्थविरावली में शिवभूति के बाद उल्लिखित आर्यकृष्ण से करते है[५४] तो पट्टावलियों एवं विशेषावश्यक भाष्य के आधार पर इनका सत समय वीरनिर्वाण सं. ६०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आस-पास निश्चित होता है[५५] क्योंकि इन्हीं आर्यकृष्ण और शिवभूति के वस्त्र सम्बन्धी विवाद के परिणामस्वरूप बोटिक निह्नव की उत्पत्ति हुई थी और इस विवाद का काल वीरनिर्वाण संवत् ६०९ सुनिश्चित है। वीरनिर्वाण ई.पू.४६७ मानने पर उस अभिलेख काल का ६०९-४६७=१४२ ई. आता है। यह अभिलेखयुक्त अंकन ९५+ ७८=१७३ई. का है। चूँकि अंकन में आर्यकृष्ण को एक आराध्य के रूप में अंकित करवाया गया है। यह स्वाभाविक है कि उनकी ही शिष्य परम्परा के किसी आर्य अर्ह द्वारा ई.सन् १७३ में यह अंकन उनके स्वर्गवास के २०-२५ वर्ष बाद ही हुआ होगा। इस प्रकार यह अभिलेखीय साक्ष्य वीरनिर्वाण संवत् ई.पू. ४६७ मानने पर ही अन्य साहित्यिक उल्लेखों से संगति रख सकता है, अन्य किसी विकल्प से इसकी संगति बैठाना सम्भव नहीं है।

मथुरा अभिलेखों में एक नाम आर्यवृद्धहस्ति का भी मिलता है। इनके दो अभिलेख मिलते हैं। एक अभिलेख शक सं.६० (हुविष्क वर्ष ६०) और दूसरा शक सं. ७९ का है।[५६] ईस्वी सन् की दृष्टि से ये दोनों अभिलेख ई.सन् १३८ और ई.सन् १५७ के हैं। यदि ये वृद्धहस्ति ही कल्पसूत्र स्थविरावली के आर्यवृद्ध और पट्टावलियों के वृद्धदेव हों तो पट्टावलियों के अनुसार उन्होंने वीरनिर्वाण ६९५ में कोरंटक में प्रतिष्ठा करवाई थी।[५७] यदि हम वीरनिर्वाण ई.पू ४६७ मानते हैं तो यह काल ६९५-४६७=२१८ ई. आता है। अत: वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ मानता पर इस अभिलेखीय साक्ष्य और पट्टावलीगत मान्यता का समीकरण ठीक बैठ जाता है। पट्टावली में वृद्ध का क्रम २५वाँ है। प्रत्येक आचार्य का औसत सत्ता काल २५ वर्ष मानने पर इनका समय वीरनिर्वाण ई.पू. मानने पर भी अभिलेख से वीरनिर्वाण ६२५ आयेगा और तब ६२५-४६७=१५८ संगति बैठ जायेगी।

अन्तिम साक्ष्य जिस पर माहवीर की निर्वाण तिथि का निर्धारण किया जा सकता है, वह है महाराज ध्रुवसेन के अभिलेख और उनका काल। परम्परागत मान्यता यह है कि वल्लभी की वाचना के पश्चात् सर्वप्रथम कल्पसूत्रकी सभा के समक्ष वाचना आनन्दपुर (बडनगर) में महाराज ध्रुवसेन के पुत्र-मरण के दु:ख को कम करने के लिये की गयी। यह काल वीरनिर्वाण सं. ९८० या ९९३ माना जाता है।[५८] ध्रुवसेन के अनेक अभिलेख उपलब्ध हैं। ध्रुवसेन प्रथम का काल ई.सं. ५२५ से ५५० तक माना जाता है।[५९] यदि यह घटना उनके राज्यारोहण के द्वितीय वर्ष ई. सन् ५२६ की हो तो महावीर का निर्वाण ९९३-५२६=४६९ ई.पू. सिद्ध होता है।

इस प्रकार इन पाँच अभिलेखीय साक्ष्यों में तीन तो ऐसे अवश्य हैं जिनसे महावीर का निर्वाण ई.पू. ४६७ सिद्ध होता है। जबकि दो ऐसे हैं जिनसे वीरनिर्वाण ई.पू. ५२७ भी सिद्ध हो सकता है। एक अभिलेख का इनसे कोई संगति नहीं है। ये असंगतियाँ इसलिए भी है कि पट्टावलियों में आचार्यों का जो काल दिया गया है उसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है और आज हमारे पास ऐसा कोई आधार नहीं है जिसके आधार पर इस असंगति को समाप्त किया जा सके। फिर भी इस विवेचना में हम यह पाते हैं कि अधिकांश साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्य महावीर के निर्वाण काल को ई.पू. ४६७ मानने की ही पुष्टि करते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्ध निर्वाण ई.पू. ४८२. जिसे अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने मान्य किया है, मानना होगा और तभी यह सिद्ध होगा कि बुद्ध के निर्वाण के लगभग १५ वर्ष पश्चात् महावीर का निर्वाण हुआ।

सन्दर्भ

१. (अ) णिव्वाणे वीर जिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसु। पणमासेसु गदेसु संजादो सगणिओ अहवा।।-तिलोयपण्णत्ति, ४/१४९९.
(ब) पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया। परिणिव्वुअस्सअरिहतो सो उण्णण्णो सगो राया।।-तित्थोगाली पइन्नय, ६२३

२. पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार, जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, श्री वीरशासन संघ, कलकत्ता, १९५६, पृ. २६-४४, ४५-४६

३. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना, प्रकाशक क.वि. शास्त्र समिति, जालौ (मारवाड़), पृ. १५९

४. तित्थोगाली पइन्नयं (गाथा ६२३), पइण्णयसुत्ताइं, सं. मुनि पुष्यविजय, प्रकाशक श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, ४०००३६

५. तिलोयपण्णत्ति, ४/१४९९ सं. प्रो. हीरालाल जैन, जैन संस्कृतिरक्षक संघ शोलापुर,

६. कल्पसूत्र, १४७, पृ. १४५, अनुवादक माणिकमुनि, प्रकाशक-सोभागमल हरकावत, अजमेर

७. ठाणं (स्थानांग), अगुंसुत्ताणि भाग १, आचार्य तुलसी, जैनविश्वभारती, लाडनूँ ७/१४१

८. भगवई, ९/२२२-२२९ (अंगसुत्ताणि भाग २-आचार्य तुलसी, जैनविश्वभारती लाडनूँ)

९. आवश्यकनिर्युक्ति, ७७८-७८३ (निर्युक्तिसंग्रह-सं. विजयजिनसेन सूरीश्वर, हर्षपुष्पामृत, जैनग्रन्थमाला, लाखा बाखल, सौराष्ट्र, १९८९)

१०. तिलोयपण्णति, ४/१४९६-१४९९

११. धवला टीका समन्वित षट्खण्डागम, खण्ड-४ भाग-१, पुस्तक ९ पृ० १३२-१३३

१२. कल्पसूत्र (मणिकमुनि, अजमेर), सूत्र १४७, पृ० १४५

१३. तित्थोगालीपइन्नयं (पइण्णयसुत्ताइं), ६२१

१४. एवं च श्री महावीर मुक्तैर्वर्षशते, पंच पंचाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृप:।। परिशिष्टपर्व, हेमचन्द्र, सर्ग, ८/३३९ (जैनधर्म प्रसारक संस्था भावनगर)

१५. ज्ञातव्य है चन्दुगुप्त मौर्य को वीरनिर्वाण सं० २१५ में राज्यासीन मानकर ही वीरनिर्वाण ई०पू० ५२७ में माना जा सकता है, किन्तु उसे वीरनिर्वाण १५५ में राज्यासीन मानने पर वीरनिर्वाण ई०पू० ४६७ मानना होगा।

१६. Jacobi, V. Harman--Buddhas und Mahaviras Nirvana

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

und die politische Entwicklung Magadhas Zu Jerier Zeit, 557.
१७. Charpentier Jarl-- Uttaradhyayanasutra, Introduction p.13-16.
१८. अनेकान्त, वर्ष ४ किरण १०, शास्त्री ए शान्तिराज-- भगवान महावीर के निर्वाण सम्वत् की समालोचना
१९. Indian Antiquary, Vol. XLVI, 1917, July 1917, Page 151-152, Swati Publications, Delhi, 1985.
२०. The Journal of the royal Asiatic Society, 1917, Vankteshvara, S.V.--The Date of Vardhamana, p. 122-130.
२१. मुख्तार जुगलकिशोर--"जैनसाहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश", श्री वीरशासन पृ० २६-५६
२२. मुनि कल्याणविजय-- वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना, प्रकाशक क०वि० शास्त्र समिति जालौर, वि०स० १९८७
२३. Eggermont, P.H.L.-- "The Year of Mahavira's Decease".
२४. Smith, V.A.--The Jaina Stupa nad other Antiquities of Mathura, Indological Book House, Delhi, 1969, p. 14.
२५. Norman, K.R.--Observations on the Dates of the Jina and the Buddh.
२६. दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्तं, २/१/७
२७. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण संवत् और जैनकालगणना, पृ०४-५
२८. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण और जैनकालगणना, पृ० १
२९. दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्तं, २/२/८
३०. दीघनिकाय, पासादिकसुत्तं, ६/१/१
३१. वही,
३२. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण संवत् और जैनकालगणना पृ०५
३३. (अ) Majumbar, R.C. Ancient India, p. 108
(ब) डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी-- प्राचीन भारत का इतिहास पृ०१३९
३४. तित्थोगाली पइन्नयं, ७८ (पइण्णय सुत्ताइं, महावीर विद्यालय, बम्बई)
३५. विविधगच्छीय पट्टावलीसंग्रह (प्रथम भाग) जिनविजय जी
३६. वीरनिर्वाण सम्वत् और जैन काल गणना मुनि कल्याणविजय, पृ०१७८
३७. परिशिष्ट पर्व, हेमचन्द्र, ८/३३९
३८. (अ) पट्टावलीपरागसंग्रह--मुनि कल्याणविजयजी
(ब) विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह-- प्रथमभाग सम्पादक-- जिनविजय, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीइ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, प्रथम भाग पृष्ठ १७
३९. धवला टीका समन्वित षट्खण्डागम, खण्ड-४, पुस्तक-९ पृ०१३२,१३३
४०. (अ) मुनि कल्याणविजय- पट्टावलीपरागसंग्रह, पृ० ५२ मुनिजी द्वारा किये गये अन्य परिवर्तनों के लिये देखें पृ० ४९-५०
(ब) मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण, संवत् और जैन कालगणना, पृ० १३७
४१. ज्ञातव्य है कि मुनिजी द्वारा एक ओर सम्भूति विजय के काल को आठ वर्ष से साठ वर्ष करना और दूसरी ओर मौर्यों के इतिहास सम्मत १०८ वर्ष के काल को एक सौ साठ वर्ष करना केवल अपनी मान्यता की पुष्टि का प्रयास है।
४२. तित्थोगालीपइन्नयं--पइण्ण सुत्ताइं। ७९३, ७९४
४३. डॉ० रामशंकर त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १३९।
४४. (अ) जैनशिलालेख संग्रह, भाग २, क्रमांक ४१, ५४,५५,५६,५९,६३।
(ब) आर्यकृष्ण (कण्ह) के लिये देखें-- V.A. Smith--Thejain Stupa and other Antiquities of Mathura, p. 24
४५. नन्दीसूत्र स्थविरावली, २७, २८, २९
४६. कल्पसूत्र स्थविरावली (अन्तिम गाथ भाग) गाथा १ एवं ४
४७. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण संवत् और जैन काल गणना, जालौर, पृ० १२२, आधार- युगप्रधान पट्टावलियाँ।
४८. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, लेख क्रमांक ५४
४९. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना, जालौर, पृ० १२१ एवं १३१
५०. नन्दीसूत्र स्थविरावली, २७, २८ एवं २९
५१. जैन शिलालेखसंग्रह, भाग, २, लेखक्रमांक ४१, ६७
५२. मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण संवत् और जैनकालगणना, जालौर, पृ० १०६ टिप्पणी
५३. V.A Smith, The Jian Stupa and other Antiquities of Matura, p. 24
५४. कल्पसूत्र स्थविरावली (अन्तिम गाथा भाग), गाथा १
५५. विशेषावश्यकभाष्य
५६. जैनशिलालेखसंग्रह, भाग २, लेख क्रमांक ५६, ५९
५७. मुनि जिनविजय, विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह, प्रथम भाग, पृ०१७
५८. कल्पसूत्र (सं माणिकमुनि, अजमेर) १४७
५९. गुजरात नो राजकीय अने सांस्कृतिक इतिहास ग्रन्थ ३, वी०जे० इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद-९, पृ० ४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org